THE HINDU

Date: 11-11-25

New horizons

Developing countries must take the lead in addressing the climate crisis

Editorial

The 30th edition of the Conference of Parties (COP) has begun in Brazil's Belém. Coming 10 years after the historic Paris Agreement, when all signatory members of the United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC) committed to a common goal of keeping temperatures below 2°C and "as far as possible below 1.5C", this would have been an ideal platform to take stock of the achievements so far and ramp up ambition. Instead, there is a visible sense of disarray. The United States has, yet again, withdrawn from the Paris Agreement (though not the UNFCCC) and from 2017, this break seems decisively more hostile. Wielding threats on tariffs and brinkmanship, the U.S. Administration seems actively committed to derail steps toward emission cuts, newer ways to fund adaptation and adopting clean technology. For instance, it has played a major role in recent months in scuttling a resolution by members of the International Maritime Organization (IMO) into transitioning the shipping industry away from fossil fuel use. Following Bill Gates's shift from being a vocal advocate of curbing emissions to one who no longer sees climate change as an existential threat, Mr. Trump announced it as a "vindication" of his position. There is a case that the U.S.'s isolationist policy is of diminishing relevance in an era when global investments in clean energy outpace fossil fuel investment and that businesses globally have seen the writing on the wall. But as the IMO example states, the U.S.'s abilities as a destabilising force remain formidable. That must be at the back of negotiators' minds when they began the 12-day deliberative sprint.

This COP is one of 'implementation', as the Brazil Presidency has emphasised. While the world's collective action is far short of what the Paris goals require, there is palpable optimism that the tenor of discussions from now on will visibly shift toward ironing out financial mechanisms for adaptation, preserving forests and strengthening carbon credit markets. It is likely that there will be a renewed discussion on how to make the United Nations' multilateral process more effective at delivering decisive outcomes and, perhaps, a debate on the creation of a 'climate council', as Brazil proposed earlier this year. All of this promises fresh energy and verve to a process that has come to be seen as ineffective in addressing the climate crisis. However, this is also an opportunity for the large developing economies — India, China, Brazil, and South Africa in particular — to stake claim to leadership. This might require a greater display of ambition and recalibration of past positions, particularly on financial contributions. Sans fireworks, India must begin an internal dialogue to place itself favourably for this nebulous future.

दैनिक भास्कर

Date: 11-11-25

कर्मचारियों का वेतन नहीं, बल्कि उनकी संख्या बढ़ाएं

संपादकीय

केंद्र ने 8वें वेतन आयोग की घोषणा की है। 18 माह में रिपोर्ट और 1 जनवरी से संस्तुति लागू होगी। करीब 50 लाख कर्मचारियों और 69 लाख पेंशनर्स यानी 1.19 करोड़ परिवारों को खुश करने का संदेश चरणबद्ध तरीके से बिहार, दिल्ली, यूपी और गुजरात चुनाव के पहले दिया जाएगा। देश में प्रति 1000 आबादी पर सरकारी कर्मियों (दोनों केंद्र और राज्यों के) का अनुपात मात्र 16 है, जबकि जापान में 39, यूके और कनाडा में 39 से 46, फ्रांस में 55, चीन में 57, इंडोनेशिया में 60, यूएस में 77, ब्राजील में 111 और नॉर्वे में 150 है। इससे भी चिंता का पहलू यह है कि भारत में प्रति व्यक्ति आय के अनुपात में इन कर्मियों का वेतन दुनिया में सबसे ज्यादा है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में एक सरकारी कर्मचारी देश की प्रति व्यक्ति आय के अनुपात में सात गुना ज्यादा वेतन पाता है, जबकि चीन में यह अनुपात मात्र 11 गुना है। अति-संपन्न ओईसीडी देशों में भी यह छह गुना ही है। यह बताता है कि एक सरकारीकर्मी के मुकाबले समाज के औसत व्यक्ति की आर्थिक स्थिति कैसी है। आजादी के दो दशकों तक सरकारी कर्मी की पगार प्रति व्यक्ति आय से कम थी, लेकिन वेतन आयोगों के जरिए बेतहाशा बढ़ने लगी। कई गुना सरकारी वेतन के कारण युवा इनोवेशन से हटकर सरकारी नौकरियों को ही अंतिम सत्य समझते हैं और समाज में भी आर्थिक खाई बढ़ती है।

Date: 11-11-25

विकास की विपन्नता और समृद्धि के संकट

प्रकाश दुबे, (समूह संपादक, दैनिक भास्कर)

अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने देशवासियों को आश्वस्त किया है कि बड़े हुए टेरिफ से होने वाली कमाई से हर अमेरिकी के खाते में कम से कम दो हजार डालर जमा किए जाएंगे। आर्टिफिशयल इंटेलिजेंस नहीं नैसगिक भारतीय मेधा

को परिश्रम से हजारों भारतीय तराशते हैं। नामी-गिरामी से लेकर अनाम देसी संस्थाओं में पढ़कर समय और धन खर्च करते हैं। उसके बाद जन्मभूमि छोड़कर अमेरिका जैसे समृद्ध देश को अधिक सशक्त बनाने में अपनी ऊर्जा खर्च करते हैं। बदले में डालर लक्ष्मी का आशीवाद पाते हैं। अंग्रेजी महीने जनवरी में प्रवासी दिवस मनाया जाता है। मेधावी प्रवासियों पर गर्व करता है और स्वदेश में निवेश करने का विनम्र आग्रह करता है। साल 2014 में हर हिन्दुस्तानी के खाते में 10-15 लाख रुपए जमा करने के वादे को बाबा रामदेव ने बार-बार दोहरा कर प्रचारित किया। महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में लाडली बहना है। विधानसभा चुनाव से पहले महिलाओं के खाते भरने बिहार में मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने खजाना खोला। कुछ और राज्यों में नागरिकों को अमीर बनाने का अपने-अपने तरीके से उपक्रम जारी है। अमेरिकी पिरसीडेंट ने भारत को अंततः विश्वगुरु मान लिया। ट्रम्प ने भारतीय नुस्खा अपनाया । टेरिफ हथियार से लगी चोटों को सहलाते भारत समेत दुनिया के अनेक देशों को परोपकारी की तरह वसुंधरा को बेहतर बनाने में अपने योगदान पर गर्व करना चाहिए। समृद्ध के मानचित्र में अमेरिका हाथी की तरह विशाल है। दुनिया भर को अमेरिका धौंस देता है कि जिसने डालर की अनदेखी की, उसकी खैर नहीं। अमेरिकी डालर विश्व मुद्रा के सिंहासन पर आसीन है। सिंहासन हिलाने वाले भारत, रूस, चीन, ब्राजील को धमकियां मिली। ब्रिक्स को डालर विखंडन की साजिश माना जा रहा है। रूस से भारत की तेल खरीदी की वर्तमान स्थिति पर अलग से टिप्पणी करने की जरूरत नहीं है। समृद्धि की अपनी समस्याएं हैं। विकास के अपने संकट हैं। विकासशील देश का गमछा उतार कर भारत विकसित देशों की कतार में खड़ा होना चाहता है। संकट से जूझते समृद्ध देश आंखें तरेर रहे हैं।

विकास की विपन्नता और समृद्धि के संकट को क्षेत्रीय और स्थानीय उदाहरण से सरलता से समझें। किसान आत्महत्याओं के लिए बदनाम विदर्भ अंचल के नागपुर शहर से महानगरी मुंबई को समृद्धि मार्ग से जोड़ने का काम बरसों से चल रहा है। रोजगर की तलाश में मायानगरी जाने की दौड़भाग करने वाले उत्तरप्रदेश, बिहार के साथ ही मध्यप्रदेश को विकल्प मिल सकता है। रीवा-सतना- छतरपुर से मरीजों को ढोकर लाने वाले परिजन आज भी नागपुर के डाक्टरों और अस्पतालों के भरोसे हैं। समृद्धि मार्ग पूरा होने पर इन वाहनों का मुंबई प्रवास संभव है। समय और खर्च में बचत होगी। आर्थिक सामर्थ्यवान अमेरिका उड़ जाते हैं। शहडोल- उमरिया - अनूपपुर के वनबहुल इलाकों से महाराष्ट्र के मराठवाड़ा इलाके में गए श्रमिकों की यातना - कथा याद करें। कोरोना त्रासद के दौरान गांव वापस लौटने के लिए पैदल चले लोग रेलवे की सूनी-सुनसान पटरी को सिरहाना बनाकर लेट गए। थके हारे थे। नींद आ गई। रेल इंजन कुचलता चला गया। विपन्नता की त्रासदी यह कि महामारी समाप्त होने के बाद फिर काम की तलाश में वे आदिवासी अंचल छोड़कर वापस जाने तत्पर थे। मुंबई के प्रवेशद्वार तक समृद्धि मार्ग जोड़ना बाकी है। गड्ढों से सामना होता है। बारिश के कारण गड्ढे मुंह बाए हुए या ठेकों और कमाई के स्वार्थ के कारण?

विकास की संभावनाओं के साथ समृद्धि समस्या लाती है। शिर्डी, एलोरा, अजंता को जोड़ने वाले गलियारों से आवाजाही करने वाले अब भी 120 किलोमीटर वाली कतार में 80 से कम रफ्तार पर चलते हैं। पीछे से आने वाले वाहनों के संकेतों, हार्न से बेपरवाह । विदर्भ- मराठवाझ सीमा में जुड़ने वाले ट्रक और अन्य वाहन न गतिसीमा की कतार का ध्यान रखते हैं और ध्यान दिलाने के बावजूद टस से मस नहीं होते। बेझिझक सड़क पर थमते हैं। खानपान की टूटी-फटी व्यवस्था के बावजूद कीमतें हवाई अड्डों से होड़ लेती हैं।

अपवाद हैं, कुछ। मुंबई दिशा से आने वाले यात्रियों के लिए शेंद्रा करमाडा मोड़ पर पेट्रोल पंप है। अस्थायी अल्पाहार में वरिष्ठ नागरिकों, बच्चों, मरीजों के लिए मानवीय सेवा है। पस में प्रसाधन व्यवस्था है। साफ- सुथरे अल्पाहार गृह के

पीछे कचरे का ढेर प्रमाण है- विपन्न समृद्ध बनने चलें या समृद्ध विपन्नता से बचाव करने में जुटें कमियों से छुटकारा नहीं मिलता। यही त्रासदी है।

दैनिक जागरण

Date: 11-11-25

आतंक की आहट

संपादकीय

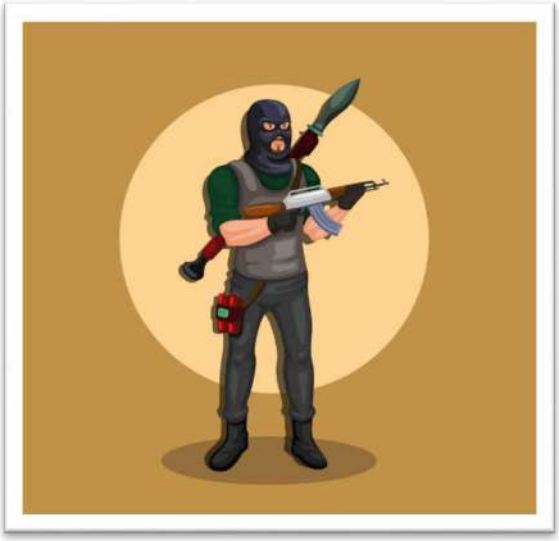

पिछले कुछ दिनों में देश के विभिन्न हिस्सों से आतंकियों के कई गुटों का जो भंडाफोड़ हुआ, वह चिंतित करने वाला ही है। यह गंभीर चिंता की बात है कि पढ़े-लिखे और यहां तक कि डाक्टर डिग्री धारक भी आतंक के रास्ते पर चल रहे हैं। इसी के साथ यह संतोष की बात भी है कि वे पुलिस और खुफिया एजेंसियों की निगाह में आ जा रहे हैं।

इसके बाद भी यह कल्पना सिहरन पैदा करती है कि यदि खतरनाक इरादों से लैस इन आतंकियों को समय रहते पकड़ा न जाता तो वे किसी बड़ी तबाही का कारण बन सकते थे। इसका एक संकेत गत दिवस दिल्ली में लाल किले के पास एक कार में जोरदार धमाके से मिलता है। कई लोगों को हताहत करने वाले इस धमाके की प्रकृति और उसकी तीव्रता किसी आतंकी करतूत की ओर ही इशारा कर रही है। इसी कारण इस घटना की जांच में आतंक निरोधक एजेंसियां भी जुट गई हैं।

इस दहशत पैदा करने वाली घटना के ठीक पहले गुजरात के आतंकवाद निरोधक दस्ते ने जिन तीन संदिग्ध आतंकियों को पकड़ा, उनमें एक हैदराबाद का डाक्टर है। उसके दो साथी उत्तर प्रदेश के हैं। उनके पास से तीन पिस्टल और कारतूस के साथ घातक जहर राइसिन बनाने वाली सामग्री मिली है।

इन आतंकियों की गिरफ्तारी के अलावा जम्मू-कश्मीर और हरियाणा पुलिस ने तीन डाक्टरों समेत सात ऐसे लोगों को गिरफ्तार किया, जिन्होंने फरीदाबाद में करीब तीन हजार किलो विस्फोटक जमा कर रखा था। इनमें एक महिला डाक्टर भी है। शेष में मौलवी और छात्र हैं। इनके पास से राइफल, पिस्टल, टाइमर आदि भी मिले हैं। साफ है कि अब यह धारणा सही नहीं रही कि अशिक्षित और गरीब मुस्लिम युवा ही आतंक की ओर उन्मुख होते हैं।

पिछले कुछ वर्षों का देश और दुनिया का अनुभव यही बताता है कि अब पढ़े-लिखा मुस्लिम युवा आतंकी बनना अधिक पसंद कर रहे हैं। वे केवल आइएस, अलकायदा, जैश और लश्कर जैसे खूंखार आतंकी संगठनों से ही नहीं जुड़ रहे हैं, बल्कि खुद के आतंकी गुट बनाने का भी दुस्साहस कर रहे हैं।

इसकी अनदेखी न की जाए कि बीते दिनों कर्नाटक की जेल में बंद एक आंतकी मोबाइल से फंड जुटाते मिला तो ग्रेटर नोएडा में एक अन्य मजहबी उन्माद भड़काने वाली किताबों का प्रकाशन करते हुए। यह सही है कि आतंक का कोई मजहब नहीं होता, लेकिन इसमें भी कोई संदेह नहीं कि मजहब की आड़ लेकर भी आतंक के रास्ते पर चला जा रहा है।

एक के बाद एक कई आतंकी गुटों के भंडाफोड़ के बीच दिल्ली की घटना केवल यही नहीं बताती कि सुरक्षा एजेंसियों को और अधिक सतर्क रहना होगा, बल्कि इसकी भी मांग करती है कि मुस्लिम समाज का राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक स्तर पर नेतृत्व करने वाले यह देखें कि किन कारणों से उनके युवा आतंक की राह पर चल रहे हैं?

Date: 11-11-25

भूटान को चीनी चंगुल से बचाने की चुनौती

श्रीराम चौलिया, (लेखक जिंदल स्कूल आफ इंटरनेशनल अफेयर्स में प्रोफेसर और डीन हैं)

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी दो दिन के लिए भूटान के दौरे पर हैं। भूटान क्षेत्रफल में भारत का सबसे छोटा पड़ोसी है, परंतु इसका सामरिक महत्व अत्यधिक है, क्योंकि यह चीनी कब्जे वाले तिब्बत और भारत के बीच ऊंचे हिमालयों में स्थित महत्वपूर्ण मध्यवर्ती देश है। गत 11 वर्षों में प्रधानमंत्री मोदी का वहां चार बार जाना और इसी तरह भूटान के प्रधानमंत्रियों और राजाओं का लगातार भारत में आगमन का क्रम दर्शाता है कि इस संवेदनशील रिश्ते को उचित ही सर्वोच्च राजनीतिक महत्व दिया जा रहा है। भूटान अगर कमजोर और बेसहारा बन जाए तो विस्तारवादी चीन न केवल उसे निगल जाएगा, बल्कि भारत की सीमा पर एक और मोर्चा खोल देगा।

1950 के दशक में तिब्बत में चीन के अतिक्रमण और वर्तमान में नेपाल में चीन के विस्तार को देखते हुए भारत के लिए यह सुनिश्चित करना अनिवार्य है कि भूटान को चीनी महत्वाकांक्षाओं से बचाकर रखे। एक अद्वितीय हिमालयी बौद्ध राष्ट्र को आक्रामक महाशक्ति चीन के जबरन कब्जे से बचाना कोई किताबी या सैद्धांतिक मुद्दा नहीं है। 'सीलाइट' नामक अंतरराष्ट्रीय शोध संस्थान के अनुसार हाल के वर्षों में चीन ने भूटान की पारंपरिक सीमाओं के भीतर कम से कम 22 कृत्रिम गांव बसाए हैं, जो इस छोटे से देश के लगभग दो प्रतिशत भूभाग पर कब्जा हैं। इन चीनी बस्तियों में सड़कें, सैन्य चौकियां और प्रशासनिक केंद्र भी शामिल हैं, जिससे जमीनी स्तर पर ऐसे नए तथ्य अंकित कर दिए गए हैं, जिन्हें नकारना मुश्किल है।

भूटान के साथ सीमा वार्ताओं के अंतर्गत चीन ने नए दावे भी पेश किए हैं, ताकि भूटान की संप्रभुता धीरे-धीरे घिस जाए और चीनी सेना भारत की सीमाओं को घेर ले। 2017 में डोकलाम में अवैध सड़क निर्माण का प्रयास चीन की दीर्घकालिक योजनाओं का नमूना था। इसी खतरे को रोकने के लिए भारतीय सेना ने 73 दिन तक चीनी फौज से आमना-सामना

किया था। अंततः चीन को डोकलाम से पीछे हटना पड़ा था। भूटान के अस्तित्व के लिए चीन के बढ़ते खतरे के चलते भारत भूटानी सेना के लिए रक्षा उपकरणों के साथ प्रशिक्षण की सुविधाएं बढ़ा रहा है।

2007 में संशोधित भारत-भूटान स्थायी मैत्री संधि के अनुसार दोनों देश "राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए हानिकारक गतिविधियों" का मुकाबला करेंगे। चीन द्वारा भूटान में घुसपैठ करने और उसे अपने अधीन लाने के मंसूबों के कारण प्रतिरक्षा भारत-भूटान संबंधों का प्रमुख स्तंभ बना रहेगा। चूंकि भूटान को भारतीय सैन्य सहायता संवेदनशील मामला है, इसलिए उसके बारे में सार्वजनिक रूप से घोषणाएं नहीं होती हैं। इस सबके बाद भी मोदी सरकार भूटान के उत्तर और पूर्व में मंडरा रहे खतरे से अवगत है और उसे जरूरी संसाधन उपलब्ध करा रही है।

भूटान को अपने प्रभाव में लाने के इरादे से चीन उसे आर्थिक प्रलोभन भी दे रहा है। दक्षिण एशिया में भारत के पड़ोसियों में भूटान एकमात्र देश है, जो चीन की 'बेल्ट एंड रोड' पहल में शामिल नहीं हुआ है। ऐसे में भूटान की आर्थिक प्रगति, ढांचागत सुधार और आधुनिकीकरण के प्रति भारत का विशेष उत्तरदायित्व है। भूटान की अपनी चौथी यात्रा में मोदी भारत की मदद से बने पुनतसंगचु जलविद्युत परियोजना का अनावरण करेंगे, जिससे भारत को भूटान से बिजली का निर्यात और भूटान में भारतीय कंपनियों का निवेश बढ़ेगा। भारत अपने उत्तर-पूर्वी राज्य असम के कोकराझार से भूटान के प्रतिष्ठित 'न्यू गेलेफू माइंडफुलनेस सिटी' तक 58 किलोमीटर लंबी रेल लाइन का भी निर्माण कर रहा है, जिससे आपसी कारोबार और पर्यटन का विकास होगा।

अंतरिक्ष उपग्रहों से लेकर वित्तीय प्रौद्योगिकी तक भारत उभरते क्षेत्रों में भूटान की मदद कर रहा है, ताकि उसके विभिन्न राजनीतिक समूह और सामाजिक वर्ग भारत के साथ मित्रता के ठोस लाभ को महसूस कर सकें। वर्षों से भूटान भारतीय सहायता का सबसे बड़ा प्राप्तकर्ता रहा है। 2025-26 के भारतीय बजट में उसके लिए 2,150 करोड़ रुपये आवंटित किए गए। मोदी की भूटान यात्रा दुनिया को याद दिलाएगी कि भारत दक्षिण एशियाई पड़ोसियों के लिए प्रमुख साझीदार बनने के लिए तत्पर है और इस मामले में चीन से प्रतिस्पर्धा करने से नहीं कतराएगा।

विकास और प्रतिरक्षा के अलावा भारत ने संस्कृति और आध्यात्मिकता को अपनी भूटान नीति का तीसरा स्तंभ बनाया है।भूटान की इस यात्रा के दौरान मोदी एक मठ में भगवान बुद्ध के पवित्र अवशेषों की पूजा करेंगे, जिन्हें उत्तर प्रदेश के पिपरहवा से वहां भेजा गया है। इसके अलावा भारत की ओर से बौद्ध आध्यात्मिक नेता और भूटानी राष्ट्र के संस्थापक झाबद्रुंग नामग्याल की प्रतिमा भी भूटान को प्रदर्शन के लिए दी गई है।

भूटान की आठ लाख से भी कम आबादी अत्यंत धर्मपरायण है और अपनी अद्वितीय बौद्ध विरासत के संरक्षण के प्रति सचेत है। एशिया में बौद्ध धर्म के प्रचारक के रूप में उभरकर भारत भूटान के लोगों का दिल और दिमाग जीत रहा है। बिना कहे ही सब समझते हैं कि जहां नास्तिक चीन ने अधिकृत तिब्बत में बौद्ध धर्म के विरुद्ध सांस्कृतिक नरसंहार किया, वहीं दूसरी ओर लोकतांत्रिक भारत ने सदियों पुरानी आध्यात्मिक कुंजी को संरक्षित किया। इसीलिए मोदी अपनी इस भूटान यात्रा में एक विशेष 'वैश्विक शांति प्रार्थना' समारोह में भी भाग ले रहे हैं, जो दोनों देशों की सरकारें साझा तौर पर आयोजित कर रही हैं।

भारत की रणनीति इन सभी आयामों पर ध्यान देने की है, ताकि भूटानी समाज में कोई भारत विरोधी गुट न सक्रिय होने पाए। यह संयोग नहीं कि भूटान भारत का सबसे स्थिर दक्षिण एशियाई पड़ोसी है। संगठित भारत-विरोधी तत्वों की अनुपस्थिति के फलस्वरूप भूटान में सामाजिक समरसता में खलल नहीं पड़ा है। नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका और मालदीव

की तरह भूटान में भी चीन घुसपैठ करके भारत-विरोधी भावनाओं को भड़काने की कोशिश कर रहा है। भविष्य में चीनी कारस्तानियों से निपटने के लिए भारत को भूटानी विशिष्ट वर्ग के साथ-साथ आम लोगों से भी घनिष्ठ संबंध बनाने होंगे। मोदी बार-बार भूटान जाते रहे तो दोनों देशों की मित्रता यूं ही सुदृढ़ होती रहेगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-11-25

लोकलुभावन कदमों का जाल और उसकी कीमत

अमरेंदु नंदी, (लेखक भारतीय प्रबंध संस्थान रांची में अर्थशास्त्र और लोकनीति विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं।)

बिहार के साथ ही चुनावों का एक अहम चक्र शुरू हो रहा हैं जो अगले दो साल तक चलेगा। इस दौरान 11 अन्य राज्यों में भी चुनाव होंगे। हमेशा की तरह चुनाव के पहले बंटने वाली 'रेवड़ी' और लोकलुभावन वादे इस दौरान सुर्खियों में रहेंगे। इससे भी ज्यादा अहम एक बात है जिस पर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। और वह है राज्यों के वित्तीय अनुशासन का क्षरण।

देश की राजनीतिक अर्थव्यवस्था के तहत उप राष्ट्रीय राजकोषीय विचलन अब अनदेखी करने लायक नहीं रह गया है। प्रतिस्पर्धी लोकलुभावनवाद के प्रमाण लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं। मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार बीते दो साल में आठ राज्यों के विधान सभा चुनावों से पहले 67,928 करोड़ रुपये की राशि व्यय की गई। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि महिलाओं पर केंद्रित योजनाएं अब सामान्य हो चली हैं और इनकी मदद से अक्सर सत्ताधारी दल असंतोष से पार पाकर दोबारा चुनाव जीत जाते हैं। मध्य प्रदेश में लाड़ली बहना योजना ने भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) को चार कार्यकालों की सत्ता विरोधी लहर से निपटने में मदद की और उसके मत प्रतिशत में 7.53 फीसदी का इजाफा हुआ। झारखंड में मैया सम्मान योजना भी झारखंड मुक्ति मोर्चा (झामुमो) के लिए उतनी ही कामयाब साबित हुई। पीआरएस की एक रिपोर्ट में अनुमान जताया गया कि वर्ष 2024-25 में नौ राज्यों ने करीब एक लाख करोड़ रुपये की राशि महिलाओं को बिना शर्त नकदी हस्तांतरण के लिए आवंटित की। यह चुनावों से जुड़ा असाधारण राजकोषीय आवंटन था।

यह दलील दी जा सकती है कि इन वादों ने कल्याण और राजनीतिक संरक्षण के बीच की रेखा को धुंधला कर दिया है। इससे राज्यों की वित्तीय व्यवस्था में लोकलुभावनवाद गहराई से शामिल हो गया। विकास अर्थशास्त्र भी बेहतर डिजाइन वाले सशर्त हस्तांतरणों का समर्थन करता है खासतौर पर महिलाओं के लिए। मुद्दा नकद हस्तांतरण नहीं बल्कि उनकी वर्तमान संरचना है जो अधिकतर बिना शर्त सार्वभौमिक और लगभग स्थायी हो गई है। यह राजकोषीय दावों को स्थायी बनाती है और राज्यों के व्यय को उत्पादक निवेश से हटाकर बारंबार दी जाने वाली रियायतों की तरफ मोड़ देती है। सत्ता पक्ष और विपक्ष तथा राज्यों के बीच लोकलुभावनवाद की होड़ का यह चक्र राजकोषीय अपव्यय का आधार बढ़ाता रहता है।

नीति आयोग के राजस्व सेहत सूचकांक (एफएचआई) 2025 जिसने 18 बड़े राज्यों का राजकोषीय मानकों पर आकलन किया, वह इस मामले में एक अच्छी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। संयुक्त ऋण- जीएसडीपी (राज्य का सकल घरेलू उत्पाद) अनुपात एक दशक पहले के 22 फीसदी से बढ़कर करीब 30 फीसदी हो गया है। ब्याज भुगतान का बोझ बढ़कर राजस्व प्राप्तियों के 21 फीसदी तक हो चुका है। पंजाब, पश्चिम बंगाल, केरल और राजस्थान में ऋण अनुपात बढ़कर 38 से 46 फीसदी तक जा पहुंचा है। कई राज्यों में राजस्व प्राप्ति का आधा से ज्यादा हिस्सा तो ब्याज भुगतान में चला जाता है। जिसकी वजह से निवेश के लिए गुंजाइश कम रह जाती है।

फिर भी ये सुर्खियां पूरी कहानी नहीं बतातीं। बजट के बाहर की उधारी और गारंटी चुपचाप बढ़ती जा रही हैं। महाराष्ट्र की बजट से इतर गारंटियां ही लगभग 1.44 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच चुकी हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और केरल जैसे कई राज्य बिजली कंपनियों, सिंचाई निगमों, और परिवहन एजेंसियों के माध्यम से नियमित रूप से उधारी लेते हैं, जिससे ये दायित्व बहीखाते से बाहर रहते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक ने इन तरह के दस्तूर को लेकर बार-बार चेतावनी दी है, और अनुमान लगाया है कि ऐसा छिपा हुआ कर्ज राज्यों के वास्तविक राजकोषीय घाटे में 0.5 से 1 फीसदी अंक तक की बढ़ोतरी कर सकता है। यह मौन संचय, जो अक्सर चुनावी लोकलुभावनवाद से प्रेरित होता है, राज्यों की राजकोषीय विश्वसनीयता को कमजोर करता है और स्थायी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकास की नींव को कमजोर करता है।

वित्तीय बाजार भी दबाव महसूस करने लगे हैं। बैंक राज्यों के बॉन्ड में मुख्य निवेशक हैं, लेकिन उन्होंने सीमित मांग दिखाई है और कई ऑक्शन में कम सब्सक्रिप्शन देखने को मिला। बैंक अक्टूबर-दिसंबर तिमाही में 2.82 लाख करोड़ रुपये की उधार लेने की योजना बना रहे हैं। वहीं आपूर्ति पाइपलाइन भारी बनी हुई है जबकि मांग कम है और रुझानों में सतर्कता है। सितंबर के आरंभ में, 10- वर्षीय राज्य विकास ऋण (एसडीएल) और केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के बीच का अंतर बढ़कर 80-100 आधार अंक तक पहुंच गया जो पिछले पांच वर्षों में सबसे अधिक था। हालांकि कुल यील्ड बढ़ी है, लेकिन बाजार अब भी अच्छे और कमजोर उधारकर्ताओं में फर्क करने में जूझ रहा है। पंजाब और पश्चिम बंगाल, जिनका कर्ज क्रमशः जीएसडीपी के 47 फीसदी और 39 फीसदी से अधिक है, अब भी गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राजकोषीय रूप से मजबूत राज्यों (जहां यह अनुपात लगभग 19 फीसदी है) की तुलना में थोड़े ही अधिक दरों पर धन जुटा रहे हैं। समान नीलामी प्रारूप और रिजर्व बैंक की हस्तक्षेप नीति ने इस अंतर को कृत्रिम रूप से कम कर दिया है, जबकि बैंकों की निवेश सीमा ने वास्तविक मूल्य निर्धारण की गुंजाइश को सीमित कर दिया राज्यों में राजस्व प्राप्ति का आधा से ज्यादा हिस्सा तो ब्याज भुगतान में चला जाता है। जिसकी वजह से निवेश के लिए गुंजाइश कम रह जाती है।

फिर भी ये सुर्खियां पूरी कहानी नहीं बतातीं। बजट के बाहर की उधारी और गारंटी चुपचाप बढ़ती जा रही हैं। महाराष्ट्र की बजट से इतर गारंटियां ही लगभग 1.44 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच चुकी हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और केरल जैसे कई राज्य बिजली कंपनियों, सिंचाई निगमों, और परिवहन एजेंसियों के माध्यम से नियमित रूप से उधारी लेते हैं, जिससे ये दायित्व बहीखाते से बाहर रहते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक ने इन तरह के दस्तूर को लेकर बार-बार चेतावनी दी है, और अनुमान लगाया है कि ऐसा छिपा हुआ कर्ज राज्यों के वास्तविक राजकोषीय घाटे में 0.5 से 1 फीसदी अंक तक की बढ़ोतरी कर सकता है। यह मौन संचय, जो अक्सर चुनावी लोकलुभावनवाद से प्रेरित होता है, राज्यों की राजकोषीय विश्वसनीयता को कमजोर करता है और स्थायी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकास की नींव को कमजोर करता है। वित्तीय बाजार भी दबाव महसूस करने लगे हैं। बैंक राज्यों के बॉन्ड में मुख्य निवेशक हैं, लेकिन उन्होंने सीमित मांग दिखाई है और कई ऑक्शन में कम सब्सक्रिप्शन देखने को मिला। बैंक अक्टूबर-दिसंबर तिमाही में 2.82 लाख करोड़ रुपये की उधार लेने की योजना बना रहे हैं। वहीं आपूर्ति पाइपलाइन भारी बनी हुई है जबकि मांग कम है और रुझानों में

सतर्कता है। सितंबर के आरंभ में, 10- वर्षीय राज्य विकास ऋण (एसडीएल) और केंद्र सरकार की प्रतिभूतियों के बीच का अंतर बढ़कर 80-100 आधार अंक तक पहुंच गया जो पिछले पांच वर्षों में सबसे अधिक था। हालांकि कुल यील्ड बढ़ी है, लेकिन बाजार अब भी अच्छे और कमजोर उधारकर्ताओं में फर्क करने में जूझ रहा है। पंजाब और पश्चिम बंगाल, जिनका कर्ज क्रमशः जीएसडीपी के 47 फीसदी और 39 फीसदी से अधिक है, अब भी गुजरात और महाराष्ट्र जैसे राजकोषीय रूप से मजबूत राज्यों (जहां यह अनुपात लगभग 19 फीसदी है) की तुलना में थोड़े ही अधिक दरों पर धन जुटा रहे हैं। समान नीलामी प्रारूप और रिजर्व बैंक की हस्तक्षेप नीति ने इस अंतर को कृत्रिम रूप से कम कर दिया है, जबकि बैंकों की निवेश सीमा ने वास्तविक मूल्य निर्धारण की गुंजाइश को सीमित कर दिया है। ऐसे माहौल में, राजकोषीय अनुशासन को कोई इनाम नहीं मिलता, और अव्यवस्था को कोई सजा नहीं, जिससे राज्यों के लिए सही रास्ते पर चलने की प्रेरणा कमजोर पड़ जाती है।

राज्यों की राजकोषीय विश्वसनीयता बहाल करना केवल वित्तीय संयम से संभव नहीं होगा। इसके लिए ऐसी संस्थाओं और तंत्रों की आवश्यकता होगी, जो आसान वादों की राजनीति का प्रतिरोध कर सकें। केंद्र सरकार को 'नो बेलआउट' संबंधी नियम के प्रति विश्वसनीय प्रतिबद्धता दिखानी होगी। जो राज्य संशोधित ऋण सीमा का उल्लंघन करें, उनके विवेकाधीन अनुदानों में स्वतः कटौती होना चाहिए। राज्य स्तर पर राजकोषीय उत्तरदायित्व कानून को नए सिरे से डिजाइन करना होगा। ऐसे ढांचे के आधार पर जो ऋण स्थायित्व विश्लेषण पर केंद्रित हो, और जिसमें सभी संभावित दायित्वों, विकास अनुमानों, और ब्याज की प्रवृत्तियों को शामिल किया जाए न कि यह केवल सरल घाटा सीमाओं पर आधारित हो, जो अक्सर रचनात्मक लेखांकन को बढ़ावा देते हैं।

बाजारों को भी अनुशासनकारी भूमिका निभानी होगी। राज्य विकास ऋण की नीलामी में पारदर्शी जानकारी और वास्तविक मूल्य निर्धारण तंत्र होना चाहिए, ताकि निवेशक जोखिम की पहचान कर सकें न कि उसे सब्सिडी देने वाला बनाएं। पंद्रहवें वित्त आयोग के शर्त आधारित उधारी ढांचे को और मजबूत किया जाना चाहिए, और उन राज्यों के लिए स्पष्ट दंड निर्धारित किए जाने चाहिए जो लगातार राजस्व घाटा बनाए रखते हुए बिना शर्त हस्तांतरण योजनाओं का विस्तार करते हैं। बहरहाल, अगर राजनीतिक प्रोत्साहनों की मूल संरचना जस की तस बनी रहती तो केवल संस्थागत सुधार पर्याप्त नहीं होंगे। सच तो यह है कि प्रतिस्पर्धात्मक लोकलुभावनवाद तब तक बना रहेगा, जब तक मतदाता लगातार हो रहे राजकोषीय अपव्यय की लागत को अंदरूनी रूप से नहीं समझते। जब चुनावी लोकलुभावनवाद के साथ राजकोषीय पारदर्शिता और मतदाता की विवेकशीलता जुड़ेगी, तभी भारत के राज्य रियायतों की बजाय सुशासन के आधार पर प्रतिस्पर्धा करेंगे।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-11-25

आतंकी साजिशों पर बना रहे शिकंजा

सुशांत सरीन, (सीनियर फेलो, ओआरएफ)

ऐतिहासिक लाल किले के पास सोमवार की देर शाम धमाके की खबर चिंताजनक है। सुबह में जब राजधानी दिल्ली से सटे फरीदाबाद शहर से 2,900 किलोग्राम विस्फोटक सामग्री मिलने की खबर आई थी, तो माना गया था कि वह हमारी सुरक्षा और खुफिया एजेंसियों की बड़ी सफलता है। वह थी भी। मगर देर शाम राष्ट्रीय राजधानी में इस तरह धमाका हो जाना संकेत है कि आतंकी किसी बड़ी घटना को अंजाम देने की तैयारी में जुटे थे। इससे पहले रविवार को गुजरात के अहमदाबाद में एटीएस ने आईएस के तीन संदिग्धों को दबोचा था। ख़बर यह भी है कि बांग्लादेश के अंदर लश्कर-ए-तैयबा के आतंकी सक्रिय हो गए हैं और अब वहां से भारत में दहशतगर्दों के निर्यात का खतरा बढ़ गया है।

जाहिर है, हमारी राष्ट्रीय और आंतरिक सुरक्षा आतंकियों के रडार पर है। वैसे, यह खतरा तो हमेशा से रहा है। हां, उसकी निरंतरता व तीव्रता ऊपर-नीचे होती रही है। कभी खतरा बढ़ गया, तो कभी कम होता प्रतीत हुआ। पिछले एक-डेढ़ साल की तेजी से बदली भू- राजनीति भी हमारे सुरक्षा बलों की परीक्षा लेती रही है। बांग्लादेश के घरेलू हालात, नेपाल के उपद्रव और पाकिस्तान परस्त आतंकी संगठनों की नई रणनीति (विशेषकर सीमा रेखा के पास बड़े आतंकी शिविरों के बजाय सुदूर इलाकों में छोटे-छोटे ठिकाने बनाना, ताकि भारतीय एजेंसियों की निगरानी से बचा जा सके) ने क्षेत्र में ऐसी अस्थिरता को जन्म दिया है, जिसमें भारत के सामने चुनौतियां बढ़ गई हैं। नतीजतन, हमने अपनी सुरक्षात्मक रणनीति भी तेजी से बदली है।

यह सही है कि सभी आतंकी गतिविधियां कट्टर इस्लामी सोच से प्रेरित नहीं होतीं, लेकिन यह भी सच है कि भारत में कश्मीर से जुड़े आतंकी गुटया अंतरराष्ट्रीय जेहादी संगठन से प्रेरित आतंकवाद का खतरा कभी टला नहीं है। उसमें उतार-चढ़ाव आता रहा है। मुमकिन है कि ऑपरेशन सिंदूर के बाद पाकिस्तान सीधे तौर पर कोई हिमाकत न करे, लेकिन उसकी जमीन पर पलने वाले आतंकी संगठन इसी कोशिश में होंगे कि किसी आतंकी घटना को अंजाम देकर भारत में अस्थिरता पैदा की जाए। वे इसको भारत का घरेलू मसला बताकर दुष्प्रचार भी कर सकते हैं। दिल्ली धमाके के बाद अगर ऐसा होता है, तो कोई आश्चर्य नहीं होगा ।

फरीदाबाद में जम्मू-कश्मीर और स्थानीय पुलिस की संयुक्त कार्रवाई की थी। हालांकि, जो कहानी पुलिस ने सुनाई है, वह कुछ अतिरंजित लग सकती है, फिर भी इसे सुरक्षा बलों और खुफिया एजेंसियों के तालमेल का सुखद नतीजा माना जाना चाहिए। जो विस्फोटक बरामद हुआ, वह अमोनियम नाइट्रेट था, जो कोई बना बनाया विस्फोटक नहीं होता, बल्कि प्रयोगशाला में तैयार किया जाता है। इसके लिए प्रशिक्षण की दरकार होती है। जाहिर है, जिन संदिग्धों की गिरफ्तारियां हुई हैं, उनके संपर्क तलाशे जाएंगे, ताकि पूरा षड्यंत्र उजागर हो सके। दिल्ली धमाके से भी तार जोड़ा जाएगा।

कहा जा रहा है कि वे जैश-ए-मोहम्मद से जुड़े हो सकते हैं, क्योंकि उसके पोस्टर चिपका रहे थे? एक तर्क यह भी दिया जा रहा है कि वे गजवातुल हिंद के सदस्य हो सकते हैं, जिसके नेतृत्व का सफाया भारतीय सुरक्षा बलों ने कुछ समय पहले कर दिया था? किसी अंतरराष्ट्रीय जेहादी गुट से भी उनके संबंध की बातें कही जा रही हैं। या फिर यह कोई नया सेल है? सच का पता तो जांच के बाद ही चल सकेगा, लेकिन इतना तय है कि भारत के खिलाफ एक बड़ा षड्यंत्र रचा जा रहा है और हमारी चुनौती खत्म नहीं हुई है। हमारी सुरक्षा व खुफिया एजेंसियों को और तत्पर रहना होगा।

इस पूरे मामले के कुछ अन्य पहलू भी हैं, जो चिंता बढ़ाने वाले हैं। पहला तो यही कि आम धारणा रही है कि आतंकियों को वेश-भूषा से पहचाना जा सकता है। मगर इस घटना से यह धारणा टूटती है। इसमें जो गिरफ्तारियां हुई हैं, उनमें दो

डॉक्टर हैं, जो स्वाभाविक ही पढ़े-लिखे व उच्च शिक्षित लोग हैं। इसका अर्थ यह भी है कि गरीबी और अशिक्षा से आतंकवाद के जन्म लेने की जो कहानी गढ़ी जाती रही है, वह सच नहीं है।

हालांकि, कोई पहली बार ऐसा नहीं हुआ है। पहले भी कई पढ़े-लिखे और संपन्न तबके के लोग आतंकी वारदातों में लिप्त पाए गए हैं। खूंखार आतंकी ओसामा बिन लादेन तो अरबपति परिवार से था, तो उमर सईद शेख, जिसे कंधार विमान अपहरण कांड में रिहा करवाया गया था, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स का विद्यार्थी रह चुका है। कई ऐसे अध्ययन भी हुए हैं, जो बताते हैं कि डॉक्टर और इंजीनियर आतंकवाद के प्रति विशेष आकर्षित होते हैं, क्योंकि वे तय ढर्रे पर चलना पसंद करते हैं, बेशक कितने भी आधुनिक बन गए हों। साफ है, आधुनिक शिक्षा-दीक्षा उनकी सोच को प्रभावित नहीं कर पाती ।

दूसरी बात, हम अक्सर राजनीतिक व सामाजिक कारणों से आर्थिक, शैक्षणिक और सामाजिक मुद्दों पर ज्यादा ध्यान देते हैं, वैचारिक मसलों को दरकिनार कर देते हैं, जबकि आतंकवाद मूलतः एक वैचारिक आंदोलन है। यह विध्वंसक विचारों की देन है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं कि सभी इंसानों को शक की निगाह से देखा जाए, पर देश में सामाजिक तौर पर सतर्कता जरूरी है और लोगों को एक-दूसरे की गतिविधियों पर अवश्य गौर करना चाहिए। इंडियन मुजाहिदीन के लड़ाके कितने पढ़े-लिखे और शिक्षित थे। कोई आसानी से यह पता नहीं लगा सकता था कि वे कौन हैं और किस मंशा से काम कर रहे हैं? ऐसे असामाजिक तत्वों को पढ़ने की क्षमता आम लोगों के अंदर विकसित करनी होगी।

तीसरी बात, भारत में ऐसे कई क्षेत्र है, जहां कट्टरपंथ से लोग प्रभावित होते रहे हैं। मगर हम किसी न किसी वजह से उसे ज्यादा तवज्जो नहीं देना चाहते। अब समय आ गया है कि हम उस समाज की ध्वनि को सुनें । यह गौर करना होगा कि उनके बीच किस तरह की बहस चल रही है। उनकी नाराजगी, उनकी शंकाओं को समझना होगा और उनकी समस्याओं का समाधान खोजना होगा। वास्तव में, हमें उनके मन को टटोलना होगा। यह कहने मात्र से काम नहीं चल सकता कि आतंकवाद की कमर तोड़ दी गई है। बेशक, तमाम एजेंसियों में बेहतर तालमेल से हमने आतंकवाद पर काफी हद तक काबू पा लिया है, लेकिन दिल्ली जैसे धमाके बताते हैं कि खतरा पूरी तरह से टला नहीं है। बीते दो दिनों की खबरें यही संकेत दे रही हैं कि यह चुनौती आगे भी कायम रहने वाली है।